

णिद्दा-वंचण-बहुलो घण-धण्णे होइ तिब्ब-सण्णो य ।  
 लक्खणमेदं भणियं समासदो णील-लेस्सस्स<sup>१</sup> ॥ २०२ ॥  
 रूसदि णिददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोय-भय-बहुलो ।  
 असुयदि परिभवदि परं पसंसदि य अप्पयं बहुसो<sup>२</sup> ॥ २०३ ॥  
 ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं पि व परं पि मण्णंतो ।  
 तूसदि अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणि वड्ढीओ<sup>३</sup> ॥ २०४ ॥  
 मरणं पत्थेइ रणे देदि सुबहुअं हि थुव्वमाणो दु ।  
 ण गणइ अकज्ज-कज्जं लक्खणमेदं तु काउस्स<sup>४</sup> ॥ २०५ ॥  
 (जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च सव्व-सम-पासी ।  
 दय-दाण-रदो य मिदू लक्खणमेदं तु तेउस्स<sup>५</sup> ॥ २०६ ॥

जो अतिनिद्रालु हो, दूसरोंको ठगनेमें अतिदक्ष हो, और धन-धान्यके विषयमें जिसकी अति तीव्र लालसा हो, ये सब नीललेश्यावालेके संक्षेपसे लक्षण कहे गये हैं ॥ २०२ ॥

जो दूसरोंके ऊपर क्रोध करता है, दूसरेकी निन्दा करता है, अनेक प्रकारसे दूसरोंको दुःख देता है, अथवा, दूसरोंको दोष लगाता है, अत्यधिक शोक और भयसे व्याप्त रहता है, दूसरोंको सहन नहीं करता है, दूसरोंका पराभव करता है, अपनी नाना प्रकारसे प्रशंसा करता है, दूसरेके ऊपर विश्वास नहीं करता है, अपने समान दूसरेको भी मानता है, स्तुति करनेवालेके ऊपर संतुष्ट हो जाता है, अपनी और दूसरेकी हानि और वृद्धिको नहीं जानता है, युद्धमें मरनेकी प्रार्थना करता है, स्तुति करनेवालेको बहुत धन दे डालता है, और कार्य अकार्यकी कुछ भी गणना नहीं करता है, ये सब कापोतलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०३-२०५ ॥

जो कार्य-अकार्य और सेव्य-असेव्यको जानता है, सबके विषयमें समदर्शी रहता है, दया और दानमें तत्पर रहता है, और मन, वचन तथा कायसे कोमल परिणामी होता है ये सब पीतलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०६ ॥

१ प्रा. पं. १,१४६ । गो. जी. ५११. इस्सा अमरिस अतवो अविज्जमाया अहीरिया । गेही पओसे य सढे पमत्ते रसलोलुए ॥ सायगवेसए य आरंभाओ अविरओ खुड्डो साहस्सिओ नरो । एयजोगसमाउत्तो नीललेसं तु परिणमे ॥ उक्त. ३४. २३-२४.

२ प्रा. पं. १,१४७ । गो. जी. ५१२ ३ प्रा. पं. १,१४८ । गो. जी. ५१३

४ प्रा. पं. १,१४९ । गो. जी. ५१४ वंके वंसमायारे नियडिल्ले अणुज्जुए । पलिउंचगओवाहिण मिच्छादिट्ठी अणारिए ॥ उप्फासगदुट्टुवाई य तेणे यावि य मच्छरी । एयजोगसमाउत्तो काऊलेसं तु परिणमे ॥ उक्त. ३४. २५-२६.

५ प्रा. पं. १,१५० । गो. जी. ५१५. नीयावत्ती अचवले अमाई अकुऊहले । विणीयविणए दते जोगवं उवहाणवं ॥ पियधम्मे दडधम्मे वज्जभीरू हिणएसए । एयजोगसमाउत्तो तेऊलेसं तु परिणमे ॥ उक्त. ३४. २७-२८.

चागी भद्दो चोक्खो उज्जुव-कम्मो य खमइ बहुअं पि ।  
 साहु-गुरु-पूजण-रदो<sup>१</sup> लक्खणमेदं तु पम्मस्स<sup>२</sup> ॥ २०७ ॥  
 ण उ कुणइ पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसु ।  
 णत्थि य राय-द्दोसा<sup>३</sup> ण्हो वि य सुक्क-लेस्सस्स<sup>४</sup> ॥ २०८ ॥

षड्लेश्यातीताः अलेश्याः । उक्तं च—

किण्हादि-लेस्स-रहिदा संसार-विणिग्गया अणंत-सुहा ।  
 सिद्धि-पुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुण्येव्वा<sup>५</sup> ॥ २०९ ॥

लेश्यानां गुणस्थाननिरूपणार्थमाह—

किण्हालेस्सिया णील्लेस्सिया काउलेस्सिया एइंदिय-प्पहुडि

जाव असंजद-सम्माइट्टि ति<sup>६</sup> ॥ १३७ ॥

जो त्यागी है, भद्रपरिणामी है, निर्मल है, निरन्तर कार्य करनेमें उद्यत रहता है, जो अनेक प्रकारके कष्टप्रद और अनिष्ट उपसर्गोंको क्षमा कर देता है, और साधु तथा गुरुजनोंकी पूजामें रत रहता है, ये सब षड्लेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०७ ॥

जो पक्षपात नहीं करता है, निदान नहीं बांधता है, सबके साथ समान व्यवहार करता है, इष्ट और अनिष्ट पदार्थोंके विषयमें राग और द्वेषसे रहिते है तथा स्त्री, पुत्र और मित्र आदिमें स्नेहरहित है ये सब शुक्ललेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ २०८ ॥

जो छह लेश्याओंसे रहित हैं उन्हें लेश्यारहित जीव कहते हैं । कहा भी है—

जो कृष्णादि लेश्याओंसे रहित हैं, पंच परिवर्तनरूप संसारसे पार हो गये हैं, जो अतीन्द्रिय और अनन्त सुखको प्राप्त हैं और जो आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरीको प्राप्त हो गये हैं उन्हें लेश्यारहित जानना चाहिये ॥ २०९ ॥

अब लेश्याओंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ॥ १३७ ॥

१ मु. पूजणिरदो ।

२ प्रा. पं. १, १५१ । गो. जी. ५१६. पयणुकोइमाणे य मायालोभे य पयणुए । पसंतचित्ते दंतप्पा जोगवं उवहाणवं ॥ तथा पयणुवाई य उवसते जिइदिए । एयजोगसमाऊत्तो पम्ह्लेसं तु परिणमे ॥ उक्त. ३४. २९-३०. ३ मु. राय-द्दोसा ।

४ प्रा. पं. १, १५२ । गो. जी. ५१७. अट्टरुद्दाणि वजित्ता धम्मसुक्काणि ज्ञायए । पसंतचित्ते दंतप्पा समिए गुत्ते य गुत्तिमु ॥ सरागे वीयरामे वा उवसते जिइदिए । एयजोगसमाउत्तो सुक्कलेसं तु परिणमे ॥ उक्त. ३४. ३१-३२. ५ प्रा. पं. १, १५३ गो. जी. ५५६.

६ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकपोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टयादीनि असंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानि सन्ति । स. सि. १. ८.

कथम् ? त्रिविधतीव्रादिकषायोदयवृत्तेः सत्त्वात् । सुगममन्यत् ।

तेजःपद्मलेश्याध्वानप्रतिपादनार्थमाह—

तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सण्णि-मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव

अप्पमत्तसंजदा त्ति ॥ १३८ ॥

कथम् ? एतेषां तीव्रादिकषायोदयाभावात् । सुगममन्यत् ।

शुक्ललेश्याध्वानप्रतिपादनार्थमाह—

सुक्कलेस्सिया सण्णि-मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि-

त्ति<sup>३</sup> ॥ १३९ ॥

कथं क्षीणोपशान्तकषायाणां शुक्ललेश्येति चेन्न, कर्मलेपनिमित्तयोगस्य तत्र सत्त्वापेक्षया तेषां शुक्ललेश्यास्तित्वाविरोधात् ।

शंका— चौथे गुणस्थानतक ही आदिकी तीन लेश्याएं क्यों होती हैं ?

समाधान— तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र कषायके उदयका सद्भाव चौथे गुणस्थान-तक ही पाया जाता है, इसलिये वहीतक तीन लेश्याएं कहीं । शेष कथन सुगम है ।

अब पीत और पद्मलेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान-तक होते हैं ॥ १३८ ॥

शंका— ये दोनों लेश्याएं सातवें गुणस्थानतक कैसे पाई जाती हैं ?

समाधान— क्योंकि, इन लेश्यावाले जीवोंके तीव्रतम आदि कषायोंका उदय नहीं पाया जाता है । शेष कथन सुगम है ।

अब शुक्ललेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

शुक्ललेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १३९ ॥

शंका— जिन जीवोंकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनके शुक्ललेश्याका होना कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जिन जीवोंकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनमें कर्मलेपका कारण योग पाया जाता है, इसलिये इस अपेक्षासे उनके शुक्ललेश्याके सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

अब लेश्यारहित जीवोंके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

१ तेजःपद्मलेश्ययोमिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तस्थानान्तानि । स. सि. १. ८.

२ मु. पाठोऽयं नास्ति ।

३ शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगिकेवल्यन्तानि । स. सि. १. ८.

तेण परमलेस्सिया' ॥ १४० ॥

कथम् ? बन्धहेतुयोगकषायाभावात् । सुगममन्यत् ।

लेश्यामुखेन जीवपदार्थमभिधाय भव्याभव्यद्वारेण जीवास्तित्वप्रतिपादनार्थ-  
माह—

भवियाणुवादेण अत्थि भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ॥ १४१ ॥

भव्या भविष्यन्ती<sup>१</sup> सिद्धिर्येषां ते भव्यसिद्धयः । तथा च भव्यसन्ततिच्छेदः

स्यादिति चेन्न, तेषामानन्त्यात् । न हि सान्तस्यानन्त्यम्, विरोधात् । सव्ययस्य

निरायस्य राशेः कथमानन्त्यमिति चेन्न, अन्यथैकस्याप्यानन्त्यप्रसङ्गात्<sup>२</sup> । न

सव्ययस्यानन्तस्य न क्षयोऽस्तीत्येकान्तोऽस्ति, स्वसंख्येयासंख्येयभागव्ययस्य राशेर-

नन्तस्यपि क्षयः<sup>३</sup>, द्वित्र्यादिसंख्येयराशिव्ययतो न क्षयोऽस्तीत्यभ्युपगमात्<sup>४</sup> । अर्द्धपुद्गल-

तेरहवें गुणस्थानके आगे सभी जीव लेश्यारहित हैं ॥ १४० ॥

शंका— यह कैसे ?

समाधान— क्योंकि, वहांपर बन्धके कारणभूत योग और कषायका अभाव है ।

शेष कथन सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके द्वारा जीवपदार्थका कथन करके अब भव्याभव्य मार्गणाके द्वारा

जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भवसिद्ध और अभवसिद्ध जीव होते हैं ॥ १४१ ॥

जिन्हें आगे सिद्धि प्राप्त होंगी उन्हें भव्यसिद्ध जीव कहते हैं ।

शंका— इस प्रकार तो भव्यजीवोंकी संततिका उच्छेद हो जायगा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, भव्यजीव अनन्त होते हैं । हां, जो राशि सान्त होती है

उसमें अनन्तपना नहीं बन सकता है, क्योंकि, सान्तको अनन्त माननेमें विरोध आता है ।

शंका— जिस राशिका निरन्तर व्यय चालू है, परंतु उसमें आय नहीं होती है तो

उसके अनन्तपना कैसे बन सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यदि सव्यय और निराय राशिको भी अनन्त न माना

जावे तो एकको भी अनन्तके माननेका प्रसंग आ जायगा । व्यय होते हुए भी अनन्तका क्षय

नहीं होता है, यह एकान्त नियम नहीं है, इसलिये जिसके संख्यातवें और असंख्यातवें भागका

व्यय हुआ है ऐसी अनन्त राशिका क्षय भी है, किन्तु दो-तीन आदि संख्येय राशिके व्ययमात्रसे

क्षय नहीं भी है ऐसा स्वीकार किया है ।

शंका— अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनरूप काल अनन्त होते हुए भी उसका क्षय देखा जाता है,

१ अलेश्याः अयोगकेवलिनः । स. सि. १. ८.

२ मु. भविष्यन्तीति । ३ मु. प्रसङ्गः । ४ मु. रनन्तस्यापेक्षया तद्द्वित्र्यादि ।

५ एवं भव्बुच्छेओ कोट्टागारस्स वा अवचयति त्ति । तं नाणं तत्तगओज्जागयकालंबराणं व ॥ जं

परिवर्तनकालस्यानन्तस्यापि क्षयदर्शनादनैकान्तिक आनन्त्यहेतुरिति चेन्न, उभयो-  
भिन्ननिबन्धनतः प्राप्तानन्तयोः साम्याभावतोऽर्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्य वास्तवानन्त्या-  
भावात् । तद्यथा—अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनकालः सक्षयोऽप्यनन्तः, छद्मस्थैरनुपलब्ध-  
पर्यन्तत्वात् । केवलमनन्तस्तद्विषयत्वाद्वा । जीवराशिस्तु पुनः संख्येयराशिक्षयेऽपि  
निर्मूलप्रलयाभावादनन्त इति । अथवा छद्मस्थानुपलब्ध्यपेक्षामन्तरेणानन्त्यादिति  
विशेषणाद्वा नानैकान्तिक इति । किं च स्वययस्य निरवशेषक्षयेऽभ्युपगम्यमाने  
कालस्यापि निरवशेषक्षयो जायेत, स्वययत्वं प्रत्यदिशेषात् । अस्तु चेन्न, सकलपर्याय-  
प्रक्षयतोऽशेषस्य वस्तुनः प्रक्षीणस्वलक्षणस्याभावापत्तेः । मुक्तिमनुपगच्छतां कथं  
पुनर्भव्यत्वमिति चेन्न, मुक्तिगमनयोग्यतापेक्षया तेषां भव्यव्यपदेशात् । न च योग्याः

इसलिये भव्य राशिके क्षय न होनेमें जो अनन्तरूप हेतु दिया है वह व्यभिचरित हो जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, भिन्न भिन्न कारणोंसे अनन्तपनेको प्राप्त भव्यराशि और  
अर्धपुद्गल-परिवर्तनरूप काल इन दोनों राशियोंमें समानताका अभाव है, और इसलिये  
अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल-वास्तवमें अनन्तरूप नहीं है । आगे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं—

अर्धपुद्गल-परिवर्तनकाल क्षयसहित होते हुए भी अनन्त है, क्योंकि, छद्मस्थ जीवोंके  
द्वारा उसका अन्त नहीं पाया जाता है । अथवा केवलज्ञान अनन्त है और उसका विषय  
होनेसे वह अनन्त है । जीवराशि तो संख्यातवें भागरूप राशिके क्षय हो जाने पर भी निर्मूल  
नाश नहीं होनेसे, अनन्त है । अथवा, पहले जो भव्य राशिके क्षय नहीं होनेमें अनन्तरूप हेतु  
दे आये हैं उसमें 'छद्मस्थ जीवोंके द्वारा अनन्तकी उपलब्धि नहीं होती है, इस अपेक्षाके  
बिना ही' यह विशेषण लगा देनेसे अनैकान्तिक दोष नहीं आता है । दूसरे व्ययसहित अनन्तके  
सर्वथा क्षय मान लेनेपर कालका भी सर्वथा क्षय हो जायगा, क्योंकि, व्ययसहित होनेके प्रति  
दोनों समान हैं ।

शंका— यदि ऐसा ही मान लिया जाय तो क्या हानि है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर कालकी समस्त पर्यायोंके क्षय हो जानेसे  
संपूर्ण द्रव्योंकी स्वलक्षणरूप पर्यायोंका भी अभाव हो जायगा और इसलिये समस्त वस्तुओंके  
अभावकी आपत्ति आ जायगी ।

शंका— मुक्तिको नहीं जानेवाले जीवोंके भव्यपना कैसे बन सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मुक्ति जानेकी योग्यताकी अपेक्षा उनके भव्य संज्ञा  
बन जाती है । जितने भी जीव मुक्ति जानेके योग्य होते हैं वे सब नियमसे कलंकरहित होते हैं

चातीताणागयकाला तुल्ला जओ य संसिद्धो । एक्को अणंतभागो भव्वाणमईयकालेण ॥ एस्सेण तत्तिओ च्चिय  
जुत्तो जं तो वि सब्भव्वाणं । जुत्तो न समुच्छेओ होज्ज मई कहमिणं सिद्धं । भव्वाणमणंतत्तणमणंतभागो व  
किह व मुक्को सिं । कालादओ व मंडिय मह वयणाओ व पडिवज्ज ॥ वि. मा. २३०६-२३०९. ✓

सर्वेऽपि नियमेन निष्कलङ्का भवन्ति, सुवर्णपाषाणेन व्यभिचारात् । उक्तं च—

एय-णिगोद-सरीरे जीवा दव्व-प्पमाणदो दिट्ठा ।

सिद्धेहि अणंत-गुणा सव्वेण वितीद-कालेण<sup>१</sup> ॥ २१० ॥

तद्विपरीताः अभव्याः । उक्तं च—

भविया सिद्धी जेसि जीवाणं ते भवन्ति भव-सिद्धा ।

तव्विवरीदाभव्वा संसारादो ण सिज्जन्ति<sup>२</sup> ॥ २११ ॥

भव्यगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

भवसिद्धिया एंडिय-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति<sup>३</sup> ॥ १४२ ॥

सुगममेतत् ।

अभव्यानां गुणस्थाननिरूपणायाह—

अभवसिद्धिया एंडिय-प्पहुडि जाव सण्णि-मिच्छाइट्टि

त्ति<sup>४</sup> ॥ १४३ ॥

ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, सर्वथा ऐसा मान लेने पर स्वर्णपाषाणसे व्यभिचार आ जायगा । कहा भी है—

द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिद्धराशिसे और संपूर्ण अतीत कालसे अनन्तगुणों जीव एक निगोदशरीरमें देखे गये हैं ॥ २१० ॥

भव्योंसे विपरीत अर्थात् मुक्तिगमनकी योग्यता न रखनेवाले अभव्य जीव होते हैं । कहा भी है—

जिन जीवोंकी अनन्तचतुष्टयरूप सिद्धि होनेवाली हो अथवा जो उसकी प्राप्तिके योग्य हो उन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं । और इनसे विपरीत अभव्य होते हैं । ये संसारसे निकलकर कभी भी मुक्तिको प्राप्त नहीं होते हैं ॥ २११ ॥

अब भव्यजीवोंके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

भव्यसिद्ध जीव एकेन्द्रियसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४२ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है—

अब अभव्यजीवोंके गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अभव्यसिद्ध जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४३ ॥

१ प्रा. पं. १, ८४ । गो. जी. १९६.

२ प्रा. पं. १, १५६ । गो. जी. ५५७ ( भवसिद्धा ) अनेन सिद्धेर्लब्धियोग्यताभ्यां भव्यानां

द्वैविध्यमुक्तं । जी. प्र. टी.

३ भव्यानुवादेन भव्येषु चतुर्दशापि सन्ति । स. सि. १. ८.

४ अभव्य आद्य एव स्थाने । स. सि. १. ८.

एतदपि सुगमम् ।

सम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदग-  
सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी  
मिच्छाइट्ठी चेदि ॥ १४४ ॥

आम्भवान्तःस्थनिम्बानामाम्भवनव्यपदेशवन्मिथ्यात्वादीनां सम्यक्त्वव्यपदेशो  
न्याय्यः । सुगममन्यत् । उक्तं च—

छप्पंच-णव-विहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।  
आणाए अहिगमेण व सदहणं होइ सम्मत्तं<sup>१</sup> ॥ २१२ ॥  
खीणे दंसण-मोहे जं सदहणं सुणिम्मलं होई ।  
तं खाइय-सम्मत्तं णिच्चं कम्म-क्खवण-हेऊ<sup>२</sup> ॥ २१३ ॥  
वयणेहि वि हेऊहि वि इंदिय-भय-आणएहि रूवेहि ।  
वीहच्छ-दुगुच्छाहि ण सो ते-लोककेण चालेज्ज<sup>३</sup> ॥ २१४ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है ।

अब सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र  
कहते हैं—

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,  
उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं ॥ १४४ ॥

जिस प्रकार आम्भवनके भीतर रहनेवाले नीमके वृक्षोंको आम्भवन यह संज्ञा प्राप्त हो  
जाती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व आदिको सम्यक्त्व यह संज्ञा देना उचित ही है । शेष कथन  
सुगम है । कहा भी है—

जिनेन्द्रदेवके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय और नव पदार्थोंका आज्ञा  
अथवा अधिगमसे श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं ॥ २१२ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मके सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक  
सम्यक्त्व है । जो नित्य है और कर्मोंके क्षपणका कारण है ॥ २१३ ॥

श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाले वचन या हेतुओंसे अथवा इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले

१ प्रा. पं. १, १५९ । गाथेयं पूर्वमपि ९६ गाथाङ्केन आगता । तहियाणं तु भावाणं सम्भावे  
उवएसणं । भावेणं सदहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ उक्त. २८. १५.

२ प्रा. पं. १, १६० । गो. जी. ६४६.

३ प्रा. पं. १, १६१ । गो. जी. ६४७.

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।

चल-मलिनमगाढं तं वेदग-सम्मत्तमिह मुणसु<sup>१</sup> ॥ २१५ ॥

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थ-सद्दहणं ।

उवसम-सम्मत्तमिणं पसण्ण-मल-पंक तोय-समं<sup>२</sup> ॥ २१६ ॥

सम्यग्दर्शनस्य सामान्यस्य क्षायिकसम्यग्दर्शनस्य च गुणनिरूपणार्थमाह—

सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि—प्पहुडि जाव

अजोगिकेवलि ति<sup>३</sup> ॥ १४५ ॥

किं तत्सम्यक्त्वगतसामान्यमिति चेत्, त्रिष्वपि सम्यग्दर्शनेषु यः साधारणोऽ-  
शस्तत्सामान्यम् । क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकेषु परस्परतो भिन्नेषु किं सादृश्यमिति

आकारोंसे या बीभत्स अर्थात् निन्दित पदार्थोंके देखनेसे उत्पन्न हुई ग्लानिसे, किंबहुना तीन  
लोकसे भी वह क्षायिक सम्यग्दर्शन चलायमान नहीं होता है ॥ २१४ ॥

सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतिके उदयसे पदार्थोंका जो चल, मलिन और अगाढरूप श्रद्धान  
होता है उसको वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं—ऐसा हे शिष्य तू समझ ॥ २१५ ॥

दर्शनमोहनीयके उपशमसे कीचड़के नीचे बैठ जानेसे निर्मल जलके समान पदार्थोंका,  
जो निर्मल श्रद्धान होता है वह उपशमसम्यग्दर्शन है ॥ २१६ ॥

अब सामान्य सम्यग्दर्शन और क्षायिकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके निरूपण करनेके  
लिये सूत्र कहते हैं—

सामान्यसे सम्यग्दृष्टि और विशेषकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्य-  
ग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४५ ॥

शंका— सम्यक्त्वमें रहनेवाला वह सामान्य क्या वस्तु है ?

समाधान— तीनों ही सम्यग्दर्शनोंमें जो साधारण धर्म है वह सामान्य शब्दसे यहां  
पर विवक्षित है ।

शंका— क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यग्दर्शनोंके परस्पर भिन्न भिन्न

१ प्रा. पं. १, १६६ पाठभेदः । गो. जी. ६४९. नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं । लसत्कल्लो-  
लमालासु जलमेकमवस्थितं ॥ स्वकारितेऽहंचैत्यादी देवोऽयं मेऽन्यकारिते । अन्यस्यायमिति भ्राम्यन्  
मोहाच्छाद्दोऽपि चेष्टते ॥ तदप्यलब्धमाहात्म्यं यकात् सम्यक्त्वकर्मणः । मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवो-  
द्भवेत् ॥ स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते । वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥ समेऽप्यनन्त-  
शक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं । देवोऽस्मै प्रभुरेपोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥ गो. जी. २५. जी. प्र. टी. उद्धृता.

२ गो. जी. ६५०.

३ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्टिचादीनि अयोगिकेवत्यन्तानि सन्ति ।  
स. सि. १. ८.

चेन्न, तत्र यथार्थश्रद्धानं प्रति साम्योपलम्भात् । क्षयक्षयोपशमोपशमविशिष्टानां यथार्थ-  
श्रद्धानानां कथं समानतेति चेद्भवतु विशेषणानां भेदो न विशेष्यस्य यथार्थश्रद्धानस्य ।  
सुगममन्यत् ।

वेदकसम्यग्दर्शनगुणसंख्याप्रतिपादनार्थमाह—

वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि—प्पहुडि जाव अप्पमत्त-  
संजदा त्ति ॥ १४६ ॥

उपरितनगुणेषु किमिति वेदकसम्यक्त्वं नास्तीति चेन्न, अगाढसमलश्रद्धानेन  
सह क्षयकोपशमकश्रेण्यारोहणानुपपत्तेः । वेदकसम्यक्त्वादौपशमिकसम्यक्त्वस्य कथ-  
माधिक्यतेति चेन्न, दर्शनमोहोदयजनितशैथिल्यादेस्तत्रासत्त्वतस्तदाधिक्योपलम्भात् ।

होने पर सदृशता क्या वस्तु हो सकती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उन तीनों सम्यग्दर्शनोंमें यथार्थ श्रद्धानके प्रति समानता  
पाई जाती है ।

शंका— क्षय, क्षयोपशम और उपशम विशेषणसे युक्त यथार्थ श्रद्धानोंमें समानता  
कैसे हो सकती है ?

समाधान— विशेषणोंमें भेद भले ही रहा आवे, परंतु इससे यथार्थ श्रद्धारूप  
विशेष्यमें भेद नहीं पड़ता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब वेदकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंकी संख्याके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—  
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानतक  
होते हैं ॥ १४६ ॥

शंका— ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोंमें वेदकसम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है ?

समाधान— नहीं होता, क्योंकि, अगाढ़ आदि मलसहित श्रद्धानके साथ क्षयक  
और उपशम श्रेणीका चढ़ना नहीं बनता है ।

शंका— वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिक सम्यग्दर्शनकी अधिकता अर्थात् विशेषता  
कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदयसे उत्पन्न हुई शिथिलता आदि  
औपशमिक सम्यग्दर्शनमें नहीं पाई जाती है, इसलिये वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिकसम्यग्दर्शनमें  
विशेषता सिद्ध हो जाती है ।

कथमस्य वेदकसम्यग्दर्शनव्यपदेश इति चेदुच्यते । दर्शनमोहवेदको वेदकः, तस्य सम्यग्दर्शनं वेदकसम्यग्दर्शनम् । कथं दर्शनमोहोदयवतां सम्यग्दर्शनस्य सम्भव इति चेन्न, दर्शनमोहनीयस्य देशघातिन उदये सत्यपि जीवस्वभावश्रद्धानस्यैकदेशोत्पत्त्य-<sup>१</sup> विरोधात् । देशघातिनो दर्शनमोहनीयस्य कथं सम्यग्दर्शनव्यपदेश इति चेन्न, सम्यग्दर्शनसाहचर्यात्तस्य तद्व्यपदेशाविरोधात् ।

औपशमिकसम्यग्दर्शनगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

उवसमसम्माइट्टी असंजदसम्माइट्टि—प्पहुडि जाव उवसंत—  
कसाय—वीयराय—छदुमत्था त्तिं ॥ १४७ ॥

सुगममेतत् ।

सासणसम्माइट्टी एकम्मि चेय सासणसम्माइट्टि—ट्टाणे ॥ १४८ ॥

शंका— क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनको वेदक सम्यग्दर्शन यह संज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान— दर्शनमोहनीय कर्मके उदयका वेदन करनेवाले जीवको वेदक कहते हैं । उसके जो सम्यग्दर्शन होता है उसे वेदकसम्यग्दर्शन कहते हैं ।

शंका— जिनके दर्शनमोहनीय कर्मका उदय विद्यमान है उनके सम्यग्दर्शन कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकी देशघाति प्रकृतिके उदय रहने पर भी जीवके स्वभावरूप श्रद्धानके एकदेश की उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका— दर्शनमोहनीयकी देशघाति प्रकृतिको सम्यग्दर्शन यह संज्ञा कैसे दी गई ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शनके साथ सहचर संबन्ध होनेके कारण उसको सम्यग्दर्शन इस संज्ञाके देनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

अब औपशमिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्त-कषाय-वीतराग-छप्पस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब सासादनसम्यक्त्व आदि संबन्धी गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये तीन सूत्र कहते हैं—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ १४८ ॥

१ मु. देशे सत्य ।

२ औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि । स. सि. १. ८.

सम्मामिच्छाइट्टी एकम्मि चये सम्मामिच्छाइट्टिणाणे ॥ १४९ ॥  
मिच्छाइट्टी एइंदिय-प्पहुडि जाव सण्णि-मिच्छाइट्टि'  
त्ति ॥ १५० ॥

सुगमत्वात्त्रिष्वप्येतेषु सूत्रेषु न वक्तव्यमस्ति । वृत्तं<sup>१</sup> च—

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो दु परिवदिदो ।

सो साम्णो त्ति णेयो सादिय मघ पारिणामिओ भावो ॥ २१७ ॥

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।

विरदाविरदेण समो सम्माम्मिच्छो त्ति णादव्वो ॥ २१८ ॥

ण वि जायइ ण वि मरइ ण वि सुद्धो ण वि य कम्म-उम्मुक्को ।

चउगइमज्झत्थे वुण रागाइ-समण्णियो जीवो ॥ २१९ ॥

तिण्णि जणा एक्केक्कं दोहो णेच्छंति ते तिवग्गा य ।

एक्को तिण्णि ण इच्छइ सत्त वि पावंति मिच्छत्तं ॥ २२० ॥

सम्यग्दर्शनादेशप्रतिपादनार्थमाह—

णेरइया अत्थि मिच्छाइट्टी सासण-सम्माइट्टी सम्मामिच्छा-  
इट्टी असंजदसम्माइट्टि त्ति ॥ १५१ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ १४९ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टितक होते हैं ॥ १५० ॥

इन तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम है, अतएव इनके विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है । कहा भी है—

जो सम्यक्त्वसे गिरकर मिथ्यात्वको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे सासादन सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए । यह गुणस्थान सावि और पारिणामिक भाववाला है ॥ २१७ ॥

जिस जीवके जीवादिक तत्त्वोंमें श्रद्धान और अश्रद्धान रूप भाव है, उसे विरता-विरतके समान सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए ॥ २१८ ॥

वह न जन्म लेता है, न मरता है, न शुद्ध होता है और न कर्मसे उन्मुक्त होता है । किन्तु वह रागादिसे युक्त होकर चारों गतियोंमें पाया जाता है ॥ २१९ ॥

ऐसे तीन जन जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य इन तीनोंमेंसे किसी एक एक को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते, दूसरे ऐसे तीन जन जो इन तीनोंमेंसे दो दो को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते तथा कोई ऐसा भी जीव हो जो तीनोंको (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करता ये सातों जीव मिथ्यात्वी है ॥ २२० ॥

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत

१ सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टिश्च स्वे स्वे स्थाने । स. सि. १. ८.

२ अ. प्रती 'वृत्तं च' इत्यत आरम्य गाथाचतुष्कमिदं नास्ति । मु. प्रतावपि नास्ति ।

अथ स्याद्गतिनिरूपणायामस्यां गतौ इयन्ति गुणस्थानानि सन्ति, इयन्ति न सन्तीति निरूपितत्वात्न वक्तव्यमिदं सूत्रम्, सम्यक्त्वनिरूपणायां गुणस्थाननिरूपणावसराभावाच्चेति न, विस्मृतपूर्वोक्तार्थस्य प्रतिपाद्यस्य तमर्थं संस्मार्यं तत्र तत्र गतौ सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनप्रवणत्वात् । सुगममन्यत् ।

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ॥ १५२ ॥

कथं सामान्यवद्विशेषः स्यादिति चेन्न, विशेषव्यतिरिक्तसामान्यस्यासत्त्वात् । नाव्यतिरेकोऽपि द्वयोरभावासञ्जनात् । नोभयपक्षोऽपि पक्षद्वयोक्तदोषासञ्जनात् । नानुभयपक्षोऽपि । निःस्वभावप्रसङ्गात् । न च सामान्यविशेषयोरभाव एव प्राप्त-जात्यन्तरत्वेनोपलम्भात् । ततः सूक्तमेतदिति स्थितम् ।

सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १५१ ॥

शंका— गतिमार्गणाका निरूपण करते समय 'इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं और इतने नहीं होते हैं' इस बातका निरूपण कर ही आये हैं, इसलिये इस सूत्रके कथनकी कोई आवश्यकता नहीं है । तथा सम्यग्दर्शनमार्गणाका निरूपण करते समय गुणस्थानोंके निरूपणका अवसर नहीं है, इसलिये भी इस सूत्रके कथनकी आवश्यकता नहीं है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जो शिष्य पूर्वोक्त अर्थको भूल गया है उसके लिये, उस अर्थका पुनः स्मरण कराके उन उन गतियोंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंके प्रतिपादन करनेमें यह सूत्र समर्थ है, इसलिये इस सूत्रका अवतार हुआ है । शेष कथन सुगम है ॥

अब सातों पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें प्रारम्भके चार गुणस्थान होते हैं ॥ १५२ ॥

शंका— सामान्यके समान विशेष कैसे हो सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, विशेषको छोड़कर सामान्य नहीं पाया जाता है, इसलिये सामान्य कथनसे विशेषका भी बोध हो जाता है । इससे सामान्य और विशेषमें सर्वथा अभेद भी नहीं है, क्योंकि, दोनोंमें सर्वथा अभेद मान लेने पर दोनोंका अभाव हो जायगा । इसी प्रकार इन दोनोंमें सर्वथा उभयपक्ष अर्थात् सर्वथा भेद और सर्वथा अभेद भी नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर दोनों पक्षमें दिये गये दोष प्राप्त हो जायेंगे । सामान्य और विशेष सर्वथा अनुभयरूप भी नहीं हैं, क्योंकि, ऐसा मान लेनेपर वस्तुको निःस्वभावताका प्रसंग आ जायगा । तथा सामान्य और विशेषका अभाव भी नहीं है, क्योंकि, जात्यन्तर अवस्थाको प्राप्त होने रूपसे उन दोनोंकी उपलब्धि होती है । इसलिये पूर्वमें जो कथन किया है वह ठीक है, यह बात निश्चित हो जाती है ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

णेरइया असंजदसम्माइट्टि-ट्टाणे अत्थि खइयसम्माइट्टी वेदग-  
सम्माइट्टी उवसमसम्माइट्टी चेदि ॥ १५३ ॥

सुगममेतत् ।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइआ ॥ १५४ ॥

एतदपि सुबोध्यम् ।

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंजदसम्माइट्टि-  
ट्टाणे खइयसम्माइट्टी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १५५ ॥

सप्तप्रकृतीषु क्षीणासु किमिति तत्र नोत्पद्यन्त इति चेत्स्वाभाव्यात् । तत्रस्थाः  
सन्तः किमिति सप्तप्रकृतीनां क्षपयन्तीति चेन्न, तत्र जिनानामभावात् ।

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और  
उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब प्रथम पृथिवीमें सम्यग्दर्शन बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव होते हैं ॥ १५४ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुबोध है ।

अब शेष पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवीतक नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं । शेषके दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १५५ ॥

शंका— सम्यक्त्वकी प्रतिबन्धक सात प्रकृतियोंके क्षय हो जानेपर क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्यों उत्पन्न नहीं होते हैं ?

समाधान— ऐसा स्वभाव ही है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें  
नहीं उत्पन्न होते हैं ।

शंका— द्वितीयादि पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी सम्यक्त्वकी प्रतिबन्धक सात  
प्रकृतियोंका क्षय क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वहांपर जिनेन्द्रदेवका अभाव है ।

तिर्यंगादेशप्रतिपादनार्थमाह—

तिरिक्त्वा अत्थि मिच्छाइट्टी सासणसम्माइट्टी सम्मामिच्छा-  
इट्टी असंजदसम्माइट्टी संजदासंजदा त्ति ॥ १५६ ॥

संन्यस्तशरीरत्वात्त्यक्ताहारणां तिरश्चां किमिति संयमो न भवेदिति चेन्न,  
अन्तरङ्गायाः सकलनिवृत्तेरभावात् । किमिति तदभावश्चेज्जातिविशेषात् ।

एवं जाव सव्व-दीव-समुद्देसु ॥ १५७ ॥

स्वयम्प्रभादारान्मानुषोत्तरात्परतो भोगभूमिसमानत्वान्न तत्र देशव्रतिनः  
सन्ति तत एतत्सूत्रं न घटत इति न, वैरसम्बन्धेन देवैर्दानवैर्वोत्क्षिप्य क्षिप्तानां  
देशव्रतीनां सर्वत्र सत्त्वाविरोधात् ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

तिरिक्त्वा असंजदसम्माइट्टि-ट्टाणे अत्थि खइयसम्माइट्टि  
वेदग-सम्माइट्टी उवसमसम्माइट्टी ॥ १५८ ॥

अब तिर्यंच गतिमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और  
संयतासंयत होते हैं ॥ १५६ ॥

शंका— शरीरसे संन्यास ग्रहण कर लेनेके कारण जिन्होंने आहारका त्याग कर  
दिया है ऐसे तिर्यंचोंके संयम क्यों नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उनके अन्तरंग सकल-निवृत्तिका अभाव है ।

शंका— उनके अन्तरंग सकल-निवृत्तिका अभाव क्यों है ?

समाधान— जिस जातिमें वे उत्पन्न हुए हैं उसमें संयम नहीं होता यह नियम है,  
इसलिये उनके संयम नहीं पाया जाता है ।

इसी प्रकार संपूर्ण द्वीप-समुद्रवर्ती तिर्यंचोंमें समझना चाहिये ॥ १५७ ॥

शंका— स्वयंभूरमण द्वीपवर्ती स्वयंप्रभ पर्वतके इस ओर और मानुषोत्तर पर्वतके  
उस ओर ( असंख्यात द्वीप-समुद्रोंमें ) भोगभूमिके समान रचना होनेसे वहांपर देशव्रती नहीं  
पाये जाते हैं, इसलिये यह सूत्र घटित नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वैरके संबन्धसे देवों अथवा दानवोंके द्वारा उठाकर डाले  
गये देशव्रती तिर्यंचोंका सब जगह सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है, इसलिये वहांपर  
तिर्यंचोंके पांचों गुणस्थान बन जाते हैं ।

अब तिर्यंचोंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम-  
सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १५८ ॥

सुगमम् ।

तिरिक्खा संजदासंजद-ट्टाणे खइयसम्माइट्टी णत्थि अवसेसा  
अत्थि ॥ १५९ ॥

तिर्यक्षु क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताः किमिति न सन्तीति चेन्न, क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टीनां भोगभूमिमन्तरेणोत्पत्तेरभावात् । न च भोगभूमावुत्पन्नानामणुव्रतोपादानं  
सम्भवति तत्र तद्विरोधात् । सुगममन्यत् ।

एवं पंचिंदिय-तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्ता ॥ १६० ॥

एतदपि सुबोध्यम् ।

पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु असंजदसम्माइट्टि-संजदासंजद-  
ट्टाणे खइयसम्माइट्टी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १६१ ॥

तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामुत्पत्तेरभावात्तत्र दर्शनमोहनीयस्य क्षपणाभावाच्च ।  
मनुष्यादेशप्रतिपादनार्थमाह—

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंच संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं । शेष दो सम्य-  
ग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १५९ ॥

शंका— तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संयतासंयत क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, तिर्यंचोंमें यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं तो  
वे भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं, दूसरी जगह नहीं । परंतु भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके  
अणुव्रतकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि, वहांपर अणुव्रतके होनेमें आगमसे विरोध आता  
है । शेष कथन सुगम है ।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्त होते हैं ॥ १६० ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुबोध है ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं । शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १६१ ॥

क्योंकि, उनमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होते हैं और जो वहां  
उत्पन्न होते हैं उनके दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं होता है, अतः उनमें क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं  
पाया जाता है ।

मणुसा' अतिथि मिच्छाइट्टी सासणसम्माइट्टी सम्मामिच्छाइट्टी  
असंजदसम्माइट्टी संजदासंजदा संजदा त्ति ॥ १६२ ॥

सुगममेतत् ।

एवमड्ढाइज्ज—दीव—समुद्देशु ॥ १६३ ॥

वैरसम्बन्धेन क्षिप्तानां संयतानां संयतासंयतानां च सर्वद्वीपसमुद्रेषु संभवो भवत्विति चेन्न मानुषोत्तरात्परतो देव'प्रयोगतोऽपि मानुषाणां' गमनाभावात् । न हि स्वतोऽसमर्थमन्यतः समर्थं भवति, अतिप्रसङ्गात् । अथ स्यादर्धतृतीयशब्देन किमु द्वीपो विशेष्यते' उत समुद्र उत द्वावपीति ? नान्त्योपान्त्यविकल्पौ मानुषोत्तरात्परतोऽपि मनुष्याणामस्तित्वप्रसङ्गात् । अस्तु चेन्न, द्वीपत्रये मनुष्याणां सत्त्वप्रसङ्गात् । नैतदपि', सूत्रविरोधात् । नादिविकल्पोऽपि, समुद्राणां संख्यानियमाभावतः सर्वसमुद्रेषु तत्सत्त्वप्रसङ्गादिति ।

अब मनुष्योंमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयता-संयत और संयत होते हैं ॥ १६२ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है—

इसीप्रकार ढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें जानना चाहिये ॥ १६३ ॥

शंका— वैरके संबन्धसे डाले गये संयत और संयतासंयत आदि मनुष्योंका संपूर्ण द्वीप और समुद्रोंमें सद्भाव रहा आवे, ऐसा मान लेनेमें क्या हानि है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ देवोंकी प्रेरणासे भी मनुष्योंका गमन नहीं हो सकता है । ऐसा न्याय भी है कि जो स्वतः असमर्थ होता है वह दूसरोंके संबन्धसे भी समर्थ नहीं हो सकता है । यदि ऐसा न होवे तो अतिप्रसंग बोध आ जायगा । अतः मानुषोत्तरके उस ओर मनुष्य नहीं पाये जाते हैं ।

शंका— अर्धतृतीय शब्द द्वीपका विशेषण है या समुद्रका अथवा दोनोंका ? इनमेंसे अन्तके दो विकल्प तो बराबर नहीं हैं, क्योंकि, वैसा मान लेने पर मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ भी मनुष्योंके अस्तित्वका प्रसंग आ जायगा । यदि यह कहा जावे कि अच्छी बात है, मानुषोत्तरके परे भी मनुष्य पाये जावें, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार तो तीन द्वीपोंमें मनुष्योंके सद्भावका प्रसंग आता है । और वैसा है नहीं, क्योंकि, सूत्रसे विरोध

१ मु. मणुस्सा ।

२ मु. देवस्य ।

३ मु. मनुष्याणां ।

४ मु. समर्थोऽन्यतः समर्थौ ।

५ मु. विशिष्यते.

६ न तदपि ।

अत्र प्रतिविधीयते । नान्त्योपान्त्यविकल्पोक्तदोषाः समाढोक्न्ते, तयोरनभ्युपगमात् । न प्रथमविकल्पोक्तदोषोऽपि, द्वीपेष्वर्धतृतीयसंख्येषु मनुष्याणामस्तित्वनियमे सति शेषद्वीपेषु मनुष्याभावसिद्धिवन्मानुषोत्तरत्वं प्रत्यविशेषतः शेषसमुद्रेषु तदभावसिद्धेः । नाशेषसमुद्राणां मानुषोत्तरत्वमसिद्धं मारात्तनद्वीपभागस्याप्यन्यथा मानुषोत्तरत्वानुपपत्तेः । ततः सामर्थ्याद् द्वयोः समुद्रयोः सन्तीत्यनुक्तमप्यवगम्यते ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

मणुसा असंजदसम्माइट्टि-संजदासंजद-संजद-ट्टाणे अत्थि खइयसम्माइट्टी' वेदयसम्माइट्टी उवसमसम्माइट्टी ॥ १६४ ॥

सुगमत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति ।

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ॥ १६५ ॥

एतदपि सुगमम् ।

आता है । इसी प्रकार पहला विकल्प भी नहीं बन सकता है, क्योंकि, इस प्रकार द्वीपोंकी संख्याका नियम होने पर भी समुद्रोंकी संख्याका कोई नियम नहीं बनता है, इसलिये समस्त समुद्रोंमें मनुष्योंके सद्भावका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान— दूसरे और तीसरे विकल्पमें दिये गये दोष तो प्राप्त ही नहीं होते हैं, क्योंकि, परमागममें वंसा माना ही नहीं गया है । इसी प्रकार प्रथम विकल्पमें दिया गया दोष भी प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, ढाई द्वीपमें मनुष्योंके अस्तित्वका नियम हो जानेपर शेषके द्वीपोंमें जिस प्रकार मनुष्योंके अभावकी सिद्धि हो जाती है, उसी प्रकार शेष समुद्रोंमें भी मनुष्योंका अभाव सिद्ध हो जाता है, क्योंकि, ढाई द्वीपोंको छोड़कर शेष द्वीपोंकी तरह दो समुद्रोंके अतिरिक्त शेष समुद्र भी मानुषोत्तरसे परे हैं, अतः शेष द्वीपोंकी तरह, शेष समुद्रोंके भी मानुषोत्तरसे परे होनेमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार शेष द्वीपोंके लिये जो नियम लागू है वही शेष समुद्रोंके लिये भी हो जाता है । इसलिये शेष समुद्रोंमें मनुष्योंका अभाव है यह बात निश्चित हो जाती है । शेषके संपूर्ण समुद्रोंका मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ होना असिद्ध भी नहीं है, अन्यथा समीपवर्ती द्वीपभागके भी मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ होना सिद्ध नहीं होगा । इसलिये सामर्थ्यसे दो समुद्रोंमें मनुष्य पाये जाते हैं, यह बात विना कहे ही जानी जाती है ।

अब मनुष्योंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यहां पर विशेष कहने योग्य नहीं है ।

इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भी जानना चाहिये ॥ १६५ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है ।

देवादेशप्रतिपादनार्थमाह—

देवा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी  
असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १६६ ॥

एवं जाव उवरिम—गेवेज्ज—विमाण—वासिय—देवा त्ति ॥१६७॥

देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदय-  
सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठि त्ति ॥ १६८ ॥

सुगमत्वात्सूत्रत्रितये न किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिय देवा देवीओ च सोधम्मीसाण-  
कप्पवासिय-देवीओ च असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि  
अवसेसा अत्थि अवसेसियाओ अत्थि ॥ १६९ ॥

किमिति क्षायिकसम्यग्दृष्टयस्तत्र न सतीति चेन्न, देवेषु दर्शनमोहक्षपणा-  
भावात्क्षपितदर्शनमोहकर्मणामपि प्राणिनां भवनवास्यादिष्वधमदेवेषु सर्वदेवीषु  
चोत्पत्तेरभावाच्च । शेषसम्यक्त्वद्वयस्य तत्र कथं सम्भव इति चेन्न, तत्रोत्पन्नजीवानां  
पश्चात्तत्पर्यायपरिणतेः सत्त्वात् ।

अब देवोंमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि  
होते हैं ॥ १६६ ॥

इसी प्रकार उपरिम उपरिम ग्रंथेयक तकके देव जानना चाहिये ॥ १६७ ॥

देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम-  
सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६८ ॥

पूर्वोक्त तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम होनेसे इनके विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा उनकी देवियां और सौधर्म तथा  
ईशानकल्पवासी देवियां असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं हैं । शेषके दो  
सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं और होती हैं ॥ १६९ ॥

शंका— क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त देवों और देवियोंमें क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, एक तो वहांपर दर्शनमोहनीयका क्षपण नहीं होता है ।  
दूसरे जिन जीवोंने पूर्व पर्यायमें दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है उनकी भवनवासी आदि  
अधम देवोंमें और सभी देवियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है ।

शंका— शेषके दो सम्यग्दर्शनोंका उनमें सद्भाव कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वहांपर उत्पन्न हुए जीवोंके अनन्तर सम्यग्दर्शनरूप  
पर्याय हो जाती है, इसलिये शेषके दो सम्यग्दर्शनोंका वहांपर सद्भाव पाया जाता है ।

सोधम्मीसाण-प्पहुडि जाव उवरिम-उवरिम-गेवज्ज-विमाण-  
वासिय-देवा असंजदसम्माइट्टि-ट्टाणे अत्थि खइयसम्माइट्टी वेदग-  
सम्माइट्टी उवसमसम्माइट्टी ॥ १७० ॥

त्रिविधेन सम्यक्त्वेन सह तत्रोत्पत्तेर्दर्शनात् । तत्रोत्पद्य द्विविधसम्यग्दर्शनो-  
पादानात्तत्र तेषां सत्त्वं सुघटमिति ।

शेषदेवानां सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनार्थमाह—

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयंत-जयंतावराजिद-सवट्टु-  
सिद्धिविमाण-वासिय-देवा असंजदसम्माइट्टि-ट्टाणे अत्थि खइय-  
सम्माइट्टी वेदगसम्माइट्टी उवसमसम्माइट्टी ॥ १७१ ॥

कथं तत्रोपशमसम्यक्त्वस्य सत्त्वमिति चेत्कथं च तत्र तस्यासत्त्वम् ?  
तत्रोत्पन्नेभ्यः क्षायिकक्षायोपशमिकसम्यग्दर्शनेभ्यस्तदनुत्पत्तेः । नापि मिथ्यादृष्टय  
उपात्तोपशमिकसम्यग्दर्शनाः सन्तस्तत्रोत्पद्यन्ते, तेषां तेन सह मरणाभावात् । न,

सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम उपरिम प्रवेयक तकके देव असंयत-  
सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१७०

उक्त देवोंमें तीनों ही प्रकारके सम्यग्दर्शनोंके साथ जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है  
अथवा, वहांपर उत्पन्न होनेके पश्चात् वेदक और औपशमिक इन दो सम्यग्दर्शनोंका ग्रहण होता  
है, इसलिये उक्त देवोंमें तीनों सम्यग्दर्शनोंका सद्भाव बन जाता है ।

अब शेष देवोंमें सम्यग्दर्शनके भेद बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

नव अनुदिशोंमें और विजय, वंजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वायंसिद्धि इन पांच  
अनुत्तरोंमें रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि  
और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १७१ ॥

शंका— यहांपर उपशम सम्यग्दर्शनका सद्भाव कैसे पाया जाता है ?

प्रतिशंका— यहांपर उसका सद्भाव कैसे नहीं पाया जा सकता है ?

शंका— वहांपर जो उत्पन्न होते हैं उनके क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन  
पाया जाता है, इसलिये उनके उपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है । और  
मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यग्दर्शनको ग्रहण करके वहांपर उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि, ऐसे  
उपशमसम्यग्दृष्टियोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण नहीं होता है ।

समाधान— नहीं, क्योंकि, उपशम श्रेणीपर चढ़नेवाले और चढ़कर उतरनेवाले  
जीवोंकी अनुदिश और अनुत्तरोंमें उत्पत्ति होती है, इसलिये वहांपर उपशम सम्यक्त्वके सद्भाव  
रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

'उपशमश्रेण्यामारूढानामारूढ्यावतीर्णानां च तत्रोत्पत्तितस्तत्र तत्सत्त्वाविरोधात् । उपशमश्रेण्यारूढा उपशमसम्यग्दृष्टयो न म्रियन्ते औपशमिकसम्यग्दर्शनोपलक्षितत्वाच्छेषौपशमिकसम्यग्दृष्टय इवेति चेन्न, पश्चात्कृतमिथ्यात्वसम्यक्त्वाभ्यामनुपशमितोपशमितचारित्रमोहाभ्यां च तयोर्वैधर्म्यात् ।

सम्यग्दर्शनमुखेन जीवपदार्थमभिधाय समनस्कामनस्कभेदेन जीवपदार्थप्रतिप्रतिपादनार्थमाह—

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ॥ १७२ ॥

सुगममेतत्सूत्रम्<sup>१</sup> । उक्तं च—

मीमंसदि जो पुवं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।

सिक्खदि णामेणेदि य सो समणो असमणो य विवरीदो ॥ २२१ ॥

संज्ञिनां गुणस्थानाध्वानप्रतिपादनार्थमाह—

सण्णी मिच्छाइट्टि—प्पहुडि जाव खीणकसाय—वीयराय—

छदुमत्था त्ति<sup>३</sup> ॥ १७३ ॥

शंका— उपशम श्रेणीपर आरूढ हुए उपशम सम्यग्दृष्टि जीव नहीं मरते हैं, क्योंकि, वे उपशम सम्यग्दर्शनसे युक्त होते हैं । जिस प्रकार अन्य औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका मरण नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पश्चात्कृत मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी अपेक्षा तथा अनुपशमित और उपशमित चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा साधारण उपशम सम्यग्दृष्टियों और उपशम श्रेणीपर चढ़े हुए सम्यग्दृष्टियोंमें वैधर्म्य है ।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनके द्वारा जीव पदार्थका कथन करके अब समनस्क और अमनस्क इन दो भेदरूप संज्ञीमार्गणाके द्वारा जीव पदार्थके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी और असंज्ञी जीव होते हैं ॥ १७२ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

जो कार्य करनेसे पूर्व कार्य और अकार्यका, तथा तत्त्व और अतत्त्वका विचार करता है, दूसरोंके द्वारा दी गई शिक्षाओंको सीखता है और नाम लेनेपर आ जाता है वह समनस्क है और जो इससे विपरीत है वह अमनस्क है ॥ २२१ ॥

अब संज्ञी जीवोंके गुणस्थानोंमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय - वीतराग - छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥ १७३ ॥

१ मु. श्रेण्यारूढा । २ अ. प्रतो 'उक्तंच' इत्यत आरम्भ गायेयं नास्ति । मु. प्रतावपि ।

३ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु द्वादश गुणस्थानानि क्षीणकषायान्तानि । स. सि. १. ८.

समनस्कत्वात्सयोगकेवलिनोऽपि' संज्ञिन इति चेन्न, तेषां क्षीणावरणानां मनोऽवष्टम्भलेन बाह्यार्थग्रहणाभावतस्तदसत्त्वात् । तर्हि भवन्तु केवलिनोऽसंज्ञिन इति चेन्न, साक्षात्कृताशेषपदार्थानामसंज्ञित्वविरोधात् । असंज्ञिनः केवलिनो मनोऽनपेक्ष्य बाह्यार्थग्रहणाद्विकलेन्द्रियवदिति चेद्भवत्येवं यदि मनोऽनपेक्ष्य ज्ञानोत्पत्तिमात्रमाश्रित्या-संज्ञित्वमुच्येत । किं पुनरसंज्ञित्वस्य निबन्धनमिति<sup>१</sup> चेत् ? मनसोऽभावाद् बुद्ध्य-तिशयाभावः ततो नानन्तरोक्तदोष इति । सुगममन्यत्<sup>२</sup> ।

असण्णी एइंदिय-प्पहुडि जाव असण्णिण-पंचिंदिया त्तिं ॥१७४॥

एतदपि सूत्रं सुगमम्<sup>३</sup> ।

आहारमुखेन जीवप्रतिपादनार्थमाह—

आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ॥ १७५ ॥

शंका— मनसहित होनेके कारण सयोगकेवली भी संज्ञी होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आवरण कर्मसे रहित उनके मनके अवलम्बनसे बाह्य अर्थका ग्रहण नहीं पाया जाता है, इसलिये उन्हें संज्ञी नहीं कह सकते ।

शंका— तो केवली असंज्ञी रहे आर्ये ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जिन्होंने समस्त पदार्थोंको साक्षात् कर लिया है उनके असंज्ञी होनेमें विरोध आता है ।

शंका— केवली असंज्ञी होते हैं, क्योंकि, वे मनकी अपेक्षाके बिना ही विकलेन्द्रिय जीवोंकी तरह बाह्य पदार्थोंको ग्रहण करते हैं ?

समाधान— यदि मनकी अपेक्षा न करके ज्ञानकी उत्पत्तिमात्रका आश्रय करके असंज्ञीपना कहा जाता तो ऐसा होता । परंतु ऐसा नहीं है ।

शंका— तो असंज्ञित्वका क्या कारण है ?

समाधान— मनका अभाव होनेसे बुद्धिके अतिशयका अभाव असंज्ञित्वका कारण है । इसलिये केवली को पूर्वमें दिया गया दोष सम्भव नहीं है । अन्य कथन सुगम है ।

असंज्ञी जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त होते हैं ॥ १७४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अब आहारमार्गणाके द्वारा जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक और अनाहारक जीव होते हैं ॥ १७५ ॥

१ मु. सयोगिकेवलिनोऽपि ।

२ मु. माश्रित्यासंज्ञित्वस्य निबन्धनमिति ।

३ मु. सुगममेतत् ।

४ असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्यानम् । स. सि. १. ८.

५ मु. सुगमं सूत्रम् ।

एतदपि सुगमम् ।

'आहारिगुणप्रतिपादनार्थमाह—

आहारा एइंदिय-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति<sup>३</sup> ॥ १७६ ॥

अत्र कवल्लेपोष्ममनःकर्माहारान् परित्यज्य नोकर्माहारो ग्राह्यः, अन्यथा-  
हारकालविरहाभ्यां सह विरोधात् ।

अणाहारा चदुसु ट्वाणेसु विग्गहगइ-समावण्णाणं केवलीणं वा  
समुग्घाद-गदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ॥१७७॥

एते शरीरप्रायोग्यपुद्गलोपादानरहितत्वाद्नाहारिण उच्यन्ते ।

इति संत-सुत्त-विवरणं समत्तं ।



यह सूत्र भी सुगम है ।

अब आहारमार्गणामें गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारक जीव एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥ १७६ ॥

यहांपर आहार शब्दसे कवलाहार, लेपाहार, ऊष्माहार, मानसिकाहार और कर्माहारको छोड़कर नोकर्माहारका ही ग्रहण करना चाहिये । अन्यथा आहारकाल और विरहके साथ विरोध आता है ।

विग्रहगतिको प्राप्त जीवोंके मिथ्याव, सासादन और अविरतसम्यग्दृष्टि तथा समुद्धा-  
तगत केवलियोंके सयोगिकेवली, इन चार गुणस्थानोंमें रहनेवाले जीव और अयोगिकेवली  
तथा सिद्ध अनाहारक होते हैं ॥ १७७ ॥

ये जीव शरीरके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये अनाहारक होते हैं ।

इस प्रकार सत्प्ररूपणा-सूत्र-विवरण समाप्त हुआ ।



१ मु. आहार ।

२ आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि । स. सि. १. ८.

३ अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयत-  
सम्यग्दृष्टिश्च । समुद्धातगतः सयोगकेवली अयोगकेवली च । स. सि. १. ८.